19

सगुण ब्रह्म

प्रस्तावना

सभी वेदान्त वाक्यों में नित्यशुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य स्वरूप को ब्रह्म कहा गया है। सभी वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य ब्रह्म से ही है। ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म एकमाबाह्यम्।'' फिर भी उपाधिकृत भेद की कल्पना की जाती है न कि यथार्थ की। वेदान्तवाक्यों के द्वारा दो प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान होता है। सगुण और निर्गुण भेद से। सगुण ब्रह्म नाम, रूप, उपाधि, भेद से विशिष्ट होता है। सगुण ब्रह्म ही सृष्टि की उत्पत्ति करते हैं। उस ब्रह्म के सत्यसंकल्पत्व एवं सत्यकामात्वादि गुण होते हैं ऐसा वेदादि में स्पष्टतया कहा गया है। पूर्वपाठ में निर्गुण ब्रह्म की विवेचना कर चुके हैं। इस पाठ में सगुण ब्रह्म विषयक चर्चा की जायेगी।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- ब्रह्म में कैसा कर्तृत्व है यह जान पाने में;
- सभी वेदान्तों का कहाँ तात्पर्य है यह जान पाने में;
- तटस्थ लक्षण क्या होता है यह जान पाने में;
- ब्रह्म के तटस्थ लक्षण के विषय में उपनिषदों में क्या कहा गया है यह जान पाने में;
- प्रतिबिम्बवाद के अनुसार ईश्वर का क्या स्वरूप है यह जान पाने में;
- ब्रह्म का तटस्थ लक्षण क्या होता है, यह जान पाने में;

टिप्पणी

- अवच्छेदवाद के अनुसार ईश्वर का स्वरूप क्या होता है यह जान पाने में;
- ब्रह्म के तटस्थ लक्षण विषयक कौन सा वेद है यह जान पाने में;
- ब्रह्म के तटस्थ लक्षण विषयक कौन सी स्मृति है यह जान पाने में।

19.1 सगुण ब्रह्म का स्वरूप

19.1.1 ब्रह्म का तटस्थ लक्षण

जिसका लक्षण किया जाये वह लक्ष्य होता है। लक्ष्य का जो असाधारण धर्म है वही लक्षण होता है। लक्ष्य का जितनी स्थिति काल उतने समय तक लक्ष्य में न रहकर जो लक्ष्य का व्यावर्तक होता है वह तटस्थलक्षण कहलाता है। जैसे गन्धत्व पृथिवी का तटस्थ लक्षण है। यहाँ लक्ष्य पृथिवी है। पृथिवी का जो परमाणु होता है वह भी पृथिवी ही होता है। इसलिए परमाणु भी लक्ष्य होगा। पृथिवी का परमाणु नित्य एवं लम्बे समय तक रहता है। लेकिन गन्धत्व लम्बे समय तक नहीं रहता। जन्यभाव वस्तुरूप होता है और गन्ध जो है महाप्रलय काल में नहीं रहता। नैयायिकों के मत में उत्पत्तिकाल में (घटादि) गन्ध नहीं रहता। इसलिए गन्धत्व पृथिवी का तटस्थलक्षण है। इसी प्रकार जगत् जन्मदि के कारण ब्रह्म का तटस्थलक्षण है। जगत् की जन्म, स्थिति, लय का कारण ब्रह्म है, इसमें वेद प्रमाण है।

तैतिरीयोपनिषद् के भृगुवल्ली में कहा है ''भृगुर्वे वारूणिः वरणं पितरम् उपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति तस्मै एतत्प्रोवाच। अननं प्राणः चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचम् इति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ति येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिंसविशन्ति। तद् विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति' (3/1) इति। इस श्रुति का अर्थ इस प्रकार है- पुत्र भृगु पिता वरूण के पास आकर कहा कि मुझे ब्रह्म विद्या पढ़ाइए जनक वरूण ने विधिअनुसार ब्रह्मज्ञान का उपाय अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन और वाक् का उपदेश दिया। फिर बोले जिसके कारण ब्रह्म आदि है, जिनसे स्थावरभूतों का जन्म होता है तथा स्थिति भी रहती है एवं जिनका (ध्वंस) विनाश भी होता है तथा जहाँ विलीन होते है उस जन्म, स्थिति, लय के कारण ब्रह्मपदार्थ को विशेषकर ज्ञान करो। इस को सुनकर भृगु ने ब्रह्म की प्राप्ति हेतु साधन रूप में तप किया।

''जगज्जनमादि-कारणम्'' यहाँ पर जगत इस पद के द्वारा माया में जगत्कारत्व की आशंका नहीं करनी चाहिए। यहाँ कारणत्व से कारण विवक्षित है अर्थात् कर्तृत्व। माया यह जड़ होती है। जड़ भूत माया में कर्तृत्व सम्भव नहीं है। वेदान्त परिभाषा में धर्मराजध्वरीन्द्र के द्वारा कहा गया है ''प्रकृते ब्रह्माणि च जगज्जन्मादिकारणत्वम्।'' यहाँ पर जगत शब्द विवक्षित है। कारणत्वं और कर्तृत्व होने के कारण अविद्या में अतिव्याप्ति नहीं होगी। ''धर्मराजध्वरीन्द्र । 2010। वेदान्त परिभाषा । (श्री सीतारामशास्त्री मुसलगाँवकर चौखम्बा

टिप्पणी

विद्या भवन वाराणसी पृष्ठसंख्या-329)'' कार्य के लिए जितने भी उपादान करण है, उन कारणों का अपरोक्ष ज्ञान जिसमें है पुन: कार्य करने की इच्छा एवं कार्यकारणानुकूल प्रयत्न जिसमें होता है वह कर्ता होता है। यह तीनों ईश्वर में है।

वेदान्तपरिभाषा के कर्ता धर्मराजध्वरीन्द्र जी कहते हैं ''कर्तृत्वं च तत्तदुपादापदानगोचर। परोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्वम्'' इति। ''य: सर्वज्ञ: सर्व विद्यस्य ज्ञानमयं तप:। तस्मादेतत् ब्रह्म रूपमन्नं च जायते।। (1/1/9) इस मुण्डकोपनिषद का श्रुति वाक्य परमेश्वर की अपरोक्षज्ञानसद्भाव में प्रमाणित है। ईश्वर सब कुछ जानते हैं। इसलिए उनको सर्वज्ञ कहा गया है। वह विशेषण के द्वारा सब कुछ जानते हैं इसलिए सर्ववित् भी कहा जाता है। उस ईश्वर का संवज्ञातरूप एवं ज्ञान विकार तप होता है। इस कारण से ब्रह्म का हिरण्यगर्भ नामक, कार्यब्रह्म, रूप, नाम, और अन्न उत्पन्न होता है परमेश्वर के कार्यकारणानुकूलप्रयत्नसद्भाव में तैत्तिरियोपनिषद् के अन्तर्गत श्रुतिवाक्य की कामना की। ''बहु स्याम प्रजायप्तियति। सतप: अतप्यत। स तषलप्त्वा इदं सर्वम् असृजत्। यदिदं किञ्च। तत्सृष्टवा। तदवानुप्रविशत्।'' (2/6) उस परमात्मा की इच्छा हुई कि में प्रभूत हो जाऊँ। तदन्तर परमात्मा सृष्ट की उपयोगिता को संकल्प किया तथा उसी में प्रविष्ट हो गए। उसमें प्रवेश कर भूर्त आकृति विशिष्ट एवं आकृति से रहित अगूर्त रूप को धारण किया। ब्रह्म के जगत्जन्मारिकरण में ''जन्माद्यास्य यत:'' (1/1/2)

बादरायण द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र ही इसका प्रमाण है। यहाँ पर 'यत:' इस पद के द्वारा कारण रूपी ब्रह्म का निर्देश किया गया है। अस्य इस पद के द्वारा इत्यादि वाले जगत् की अभिव्यक्ति की गई है। नाम एवं रूप के द्वारा इस जगत् के दो अंश है। वाक्य सुधाकर द्वारा जैसा कि कहा भी गया है। ''अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेति अंशपञ्चकम्। आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो दृयम्।। जन्माद्यस्य यत:'' यह सूत्र ब्रह्मसूत्र के समन्वयाधि करणगत जन्माद्यधिकरण में पढ़ा जाता है। 'भृगूर्वेवारूणि:। वरूणं पितरं उपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मै एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राण: चक्षु: श्रोत्रं मनोवाचम् इति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तदविजिज्ञासस्व तदब्रह्मेति'' (3/9) यह श्रुति वाक्य इस अधिकरण का विषय है।

''जन्म उत्पत्ति: आदि अस्य इति तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि'' समास है। बहुब्रीहि समास में अन्य पदार्थ की प्रधानता होती है। समास घटक पदार्थ और विशेषण होते है। जहाँ विशेषण के साथ विशेष्य रूप अन्य पदार्थ का भी ग्रहण होता है वहाँ तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि-समास जानना चाहिए। जैसे ''पीताम्बरम् पश्य'' यहाँ पर पीताम्बर विशेषणों के साथ विशेष्य रूप पुरूष का ग्रहण होता है। इसी प्रकार जन्म आदि जिसका यहाँ पर जन्म विशेषण होगा। इसलिए यहाँ पर तद्गुणसंविज्ञान बहुब्रीहिसमास है। यहाँ जन्म को आदित्व वेदों के अनुसार है। तैत्तिरीयोपनिषद् श्रुतिवाक्य को प्रदर्शित करते है। ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्तियत्प्रयत्याभिसंविशन्ति। तद्विजिस्वतद्ब्रह्मेति'' (3/9) तथा जन्म का आदित्व वस्तुवृत्तापेक्ष होने से किया गया है। जन्म के द्वारा सत्ता प्राप्ति होगी तभी उसको प्राप्त सत्ता का धर्मि का स्थिति और प्रलय सम्भव है। ''सत्ताप्राप्त धर्मी'' इस सूत्र के द्वारा 'क्या अभीष्ट है इसको भगवत्पाद शंकराचार्य कहते हैं।

''भृगुर्वै वारूणि:। वरूणं पितरम् उपसार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति।'' इसी को आधार बनाकर कहा है 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति इति (3/6) अन्यनि आदि एव जातियकानि वाक्यानि नित्यशुश्द्धबुद्धमुक्त स्वभाव सर्वज्ञ स्वरूप कारण विषयाणि उदाहर्त्तव्यानि''। यहाँ पर भगवत्पाद का आशय इस प्रकार है कि यह जो भी उत्पन्न है वह आनन्द रूप ब्रह्म ही है। अनेक कर्ताओं के द्वारा तथा अनेक भोक्ताओं द्वारा संयुक्त यह जगत् है। जिनके क्रियाओं का और फलों का व्यवस्थित देशकाल निमित्त है, उस क्रिया फलों का आधार संसार है। इस प्रकार जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सर्वज्ञ परमेश्वर से ही होती है। इसलिए भगवत्पाद शंकराचार्य ने ''जन्माद्यस्य यत:'' (1/2/2) इसे ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहा है 'अस्य जगत् नामकपाभ्यो व्याकृतस्यअनेककर्तृ भोक्तसंयुक्तस्य प्रतिनियतदेशकालनिमित्तक्रिया फलाश्रयस्य मनसापि अबिन्त्यरचनाकपस्थ जन्मस्थितिभन्नम् यत: सर्वज्ञात् सर्वशक्ते: कारणात् भवति तत् ब्रह्म इति वाक्यशेष:।'' अन्तिम में ब्रह्म के नौ तटस्थलक्षण प्राप्त होते हैं। वे इस प्रकार से हैं –

1. जगज्जन्मानुकूलापरोक्षज्ञानवत्वम्
2. जगात्स्थित्यनुकूलापरोक्षज्ञानवत्वम्
3. जगल्लयानुकूलापरोक्षज्ञानवत्वम्
4. जगज्जन्मानुकूलचिकीर्षात्वम्
5. जगत्स्थित्यनुकूलचिकीर्षात्वम्
6. जगल्लयानुकूलचिकीर्षावत्वम्
7. जगज्जन्मानुकूलप्रयत्नवत्वम्
8. जगात्स्थित्यनुकूलप्रयत्नवत्वम्
9. जगल्लयानुकूलप्रयत्नवत्वम्

ब्रह्म के जगज्जन्मादिकारत्व प्रदर्शन के द्वारा सर्वज्ञत्व दर्शाया गया है। उस ब्रह्म का सर्वज्ञत्व ''शास्त्रयोनित्वात्'' (1/1/3) इस ब्रह्मसूत्र में निश्चित किया जा चुका है। इस शास्त्रयोनित्वाधिकरण का दो वर्णक है। सूत्र का एक प्रकार तात्पर्यार्थ के द्वारा। जिस भाष्य के अंश में वर्णन प्राप्त होता है वही वर्णक कहलाता है। पहले वर्णक में ''अस्य महतो भूतस्य नि:श्वास्तिमेव एतत् यत् ऋग्वेद' (2/8/10) यह बृहदारण्यकोपनिषद् के अन्तर्गत आर्य श्रुतिवाक्य का विषय है। शास्त्रस्यऋग्वेदादि: योनि:, कारणम्, तस्य भाव: तत्वं शास्त्रयोनित्वम् तस्मात् शास्त्रयोनित्वात् अर्थात् वेदकृतकत्वात्, ब्रह्म सर्वज्ञम्। ''पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि शिक्षा कल्पत्याकरण निरूक्तच्छन्दोज्योतिषाणि पड्गानि'' यह दश विद्यास्थान वेदार्थ ज्ञान के कारण होता है। ये वेज्ञादार्थ ज्ञान के कारण तथा उपकारक है ऋग्वेदादि के कारण ब्रह्म है। इसलिए भगवत्पाद शंकराचार्य द्वारा कहा भी गया है ''महत: ऋग्वेदादे: शास्त्रस्य अनेकविद्या स्थानोपवृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थवद्योतिन:

सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारण ब्रह्म। जैसे दीपक रखे हुए वस्तुओं का ज्ञान करता है उसी प्रकार ऋग्वेदादि शास्त्र अर्थों का बोध कराते है।। यह शास्त्र सर्वज्ञ (ईश्वर) के समान होते है। इस प्रकार के शास्त्र का सर्वज्ञ से ही सम्भव है, न किसी अन्य से। इसलिए भगवत्पाद शंकराचार्य द्वारा कहा गया है ''नहि दृशस्व शास्त्रस्य ऋग्वेदापिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञात् अन्यतः सम्भोऽस्ति।'' जितने अनेकार्थ प्रतिपादक शास्त्र है जिस पुरूष विशेष से उत्पन्न वह पुरूष उन शास्त्र में है ऐसा लोक में प्रसिद्ध है।

पुरूष का नित्य प्रकार प्रयत्न के बिना ही निःश्वासादि कार्य चलते है उसी प्रकार बिना प्रयत्न के लीलान्याय के द्वारा सर्वज्ञानकार ऋग्वेदादि जिससे महत भूत से प्रभाव सम्भव है वह ब्रह्म है ऐसा जानना चाहिए। इसलिए ब्रह्म सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान है। द्वितीय वर्णक में 'तं तु औपानिषद पुरूषं पृच्छामि'' (3/7/26) बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त श्रुतिवाक्य विषय है। शास्त्रम् ऋग्वेदादियोनि प्रमाणं यस्य तत् शास्त्रयोनिः तत्वं शास्त्रयोनित्वम्, तस्मात् शास्त्रयोनित्वात् अर्थात् वैदिकप्रमाणकत्वात् इति सूत्रस्य उपदेशः अर्थः।

भाष्य रत्न प्रभाकर द्वारा इस प्रश्न की विवेचना के समय कहा है कि 'यस्य निःश्वासतं वेदाः सर्वार्थज्ञानशक्रयः। श्रीरामं सर्ववेत्तारं वेदवेद्यमहं भजे।'' (वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या-116) ''एक वेद के प्रमाण के द्वारा ही ब्रह्म को जानना चाहिए।'' व्यापक, नित्य, सर्वज्ञ, सर्वशाक्तिमान, न सर्वात्मक, समस्तजगत् कारण ब्रह्म के धर्म होते हैं। ''मनोमयः प्राणशरीरः आरूयः सत्यसच्यल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वामिदमभ्यातोऽवाक्यनादरः'' (3/14/2) ऐसी छान्दोग्योपनिषद् श्रुति में मनोत्मव आदि के गुणी शरीर के उपास्य द्वारा उपदेश दिया जाता है, अथवा परमात्मा ही उपदेश देते हैं ऐसा संशय होने पर कहा गया है कि परमात्मा ही उपदिष्ट करते है। कारण निश्चित सभी वेदान्त वाक्यों में जगत का कारण ब्रह्म ही कहा गया है।

जैसा छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है ''सर्व खाल्विदं ब्रह्म तज्जतान् इति शान्तः उपासति। अथ खलु क्रतुमयः पुरूषः यथाकृत रहिमन् लोके पुरूषः भवति तथा इतः प्रेत्य भवति, स क्रतुं कुर्वीत' (3/14/1) ''विवक्षितगुणोपयत्तेश्च (1/2/2) इस ब्रह्म सूत्र में ब्रह्म का सगुण स्पष्टया प्रतिपादित है। प्रकृत सूत्र का अर्थ - ''वक्तुं इष्टाः विवक्षताः विवक्षिताश्च ते गुणाश्च इति विवक्षितगुणाः'' ब्रह्म में दो वह गुण उत्पन्न होता है, न कि जीव में। सत्यसंकल्प और सत्यकमादि जो गुण है वह सगुण ब्रह्म में ही सम्भव है। सगुणब्रह्मविषयक वेद और स्मृतियाँ है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है : ''त्वं प्रमानिस, त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वञचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः (4/3) श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है। ''सर्वतः पणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति (13/13)

भगवत्पाद शंकराचार्य के द्वारा समन्वय अध्याय के विराजमान में ''विवक्षिज्ञतगुणोपपत्तेश्य (1/2/2) इसके ब्रह्मसूत्र भाष्य में कहा गया है 'अप्राणः हिमानाः शुभ्रः'' मुण्डकोपनिषद् (3/14/2) इत्याविश्रुतिः शुद्ध ब्रह्मविषया इयं तु मनोमयः प्राणशरीरः इति सगुणब्रह्मविषया विविशेषः'' (उसी पुस्तक में, पृष्ठ संख्या : 416) अज्ञान सत् और असत् दोनों से

टिप्पणी

ही अनिर्वचनीय है। सत्व, रज तमात्मक ज्ञान विरोधी और भावरूप होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है ''अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वी: प्रज्ञा: सृजमानां सरूपा:। अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य:।। (5/8) रज और सत्व गुणों के अंश से सम्पन्न होने के कारण तमोगुण का प्रधानता के कारण विक्षेप शक्ति से युक्त होने के कारण अज्ञानोप हितचैतन्य से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी उत्पत्ति होती है। तैत्तिरियोपनिषद् में कहा गया है। तस्माद्वा एतस्मादात्मन: आकाश: सम्भूत: आकाश: वायु: इत्यादि। आकाशादि में स्वकारण गुणानुरूप उत्तरोत्तर सत्व, रज, और तमगुणों की उत्पत्ति होती है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी यह पाँच सूक्ष्म भूत होते है। यह सूक्ष्म भूत तन्मात्राएँ कहलाती हैं अर्थात् क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध अपञ्चीकृत सूक्ष्मभूत होते है। सूक्ष्मभूत से सूक्ष्मशरीर की उत्पत्ति होती है।

वह सूक्ष्मशरीर सत्रह अवयवों से युक्त होते है। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण यह ज्ञानेन्द्रियाँ है। वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ये कर्मेन्द्रियाँ है। प्राण, अपान, व्यान्, उदान, समान यह प्राण है। निश्चयात्मिका बुद्धि होती है। संकल्प और विकल्पन जो इन्द्रिय है वह मन है। यह सत्रह अवयव है। आकाशादि सात्विक अंशों से पृथक पृथक कर्म से ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। आकाशादि का सम्मिलित अंश बुद्धि और मन को उत्पन्न करते हैं। रज अंश से पाँच प्राण उत्पन्न होते है। तमोगुण प्रधान से जो पञ्चीकृत भूत नहीं है उनसे भूत पञ्चीकृत होते है। अपञ्चीकृत सूक्ष्म भूतों के द्वारा लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। लिङ्गशरीर ऊपर कहे गये सत्तरह अवयवों से युक्त है। जैसा की मैत्रीयोपनिषद् में कहा गया है। ''पञ्च प्राणमनोबुद्धिदर्शन्द्रियसमान्वितम्। अपञ्चीकृतभूतोस्यं सूक्ष्मांगम् भोगसाधनम्।। पञ्चीकृतभूतों के द्वारा भू:, भुव:, स्वर, महा:, जप, तप, स्वत्य नामक ऊपर-ऊपर रहने वाले लोकों का अतल, वितल, सुतल, रसातल, महातल, तलातल, पाताल नामक नीचे विद्यामान लोकों का, ब्रह्माण्ड के, जरायुज, अण्डज, उद्भिज, स्वेदज, नामक चार प्रकार के सूक्ष्म शरीरों का स्थूल शरीर भोग्य अन्न जल आदि की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार सृष्टि उत्पन्न होती है। कारण, सूक्ष्म और स्थूल के भेद से शरीर तीन प्रकार के होते है। समष्टि, समष्टि कारण शरीर, सूक्ष्मशरीर और अज्ञान से रहित एवं चैतन्य, सर्वज्ञ ईश्वर होता है। व्यष्टि कण शरीर और अज्ञान से उहित चैतन्य हिरण्यगर्भ है। व्यष्टि सूक्ष्मशरीर और अज्ञान से उपहित चैतन्य तेजस है। समष्टि, स्थूलशरीर और अज्ञान से उदित चैतन्य विराट है। व्यष्टि सूक्ष्मशरीर और अज्ञान से उदित चैतन्य विश्व है। स्थूल शरीर से उत्पन्न कार्य ब्रह्म ने उन हिरण्यगर्भ का साक्षात्कार किया है। इस से अशेष प्रपञ्च की उत्पत्ति हिरण्यगर्भादि देवों ने ईश्वर की परम्परा के द्वारा किया। इसलिए छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है। ''दन्तादमम् इमा: तिस्र: देवता: अनेन जीवोनात्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि'' (6/3/2) इति। हिरण्यगर्भ ही प्रथम जीव है। जैसा कि वेद में कहा गया है। ''स वे शरीरी प्रथम: स वै पुरूष: उच्यते। आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे

सरवर्तत'' (युजर्वेद-13/4) इति। जिस क्रम से सृष्टि होती है ठीक उसके विपरीत क्रम से प्रलय होता है। पृथिवी से जल, जल से तेज, तेज से वायु, वायु से आकाश, आकाश से जीवगत अहंकार में जीवगत अहंकार का कार्य ब्रह्म हिरण्यगर्भ के अहंकार में जीन हो जाता है। प्रलयकसमद्भाव में विष्णुपुराण प्रमाणित है। विष्णु पुराण में कहा गया है 'जगत्प्रतिष्ठा देवर्षै। पृथिवी जल में समाहित हो जाती है। तेज का जल में विलय हो जाता है, तेज वायु में समाहित हो जाती है। वायु आकाश में लीन हो जाती है और वह आकाश अन्य अव्यक्त में विलीन हो जाता है ''अत्यवतं पुरूषे ब्रह्ममन्। निष्फलं सप्रलयिते।। यही ब्रह्म का तटस्थ लक्षण कहा गया है।

19.1.2 बिम्ब प्रतिबिम्ब वाद से ईश्वर निरूपण

ब्रह्म दो प्रकार का जाना जाता है। सगुण एवं निर्गुण। सगुण ब्रह्म नाम रूप विकार एवं भेद के उपाधि से विशिष्ट होता है। निर्गुण ब्रह्म सभी उपाधि से रहित होता है। इसीलिए शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य में आनन्दमयाधिकरण में कहा गया है - अतः परस्य ग्रन्थस्य किमुत्थानमिति? उच्यते द्विरूपं हि ब्रह्म अधिगम्यते। नामरूपविकारभेदोपाधिविशिष्टम्, तद्विपरीतं च सर्वोपाधिविवर्जितम् इति। ब्रह्म के द्विरूपत्व में शतशः प्रमाण प्राप्त होते हैं यथा- यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितरः इतरं पश्यति, यत्र तु अस्य सर्वम् आत्मैव अभूत्, तत् केन कं पश्येत् (बृ.उ. 4.5.15)

यत्र न अन्यत् पश्चति यत्र न अन्यत् शृणोति न अन्यत् विजानाति स भूमा, अथ यत्र अन्यत् पश्यति अन्यत् शृणोति अन्यत् विजानाति तदल्पम् वै भूमा तत् अमृतम्, अथ यदल्पम्, तन्मर्त्यम् (छा.उ. 7.24.1) निष्फलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। आमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्। (श्वेताश्वेतरोपनिषत्)

इत्यादि श्रुतियाँ विद्या एवं अविद्या के भेद से ब्रह्म को दो बताते हैं। एक ही अज्ञान जीव एवं ईश्वर में उपाधिरूप से प्रदर्शित किया गया है। जैसे विष्णु पुराण में कहा है यथा-

विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तः किं करिष्यति।। इति।

जीव प्रतिबिम्बस्थानीय होता है। सगुण ब्रह्म अर्थात् ईश्वर बिम्बस्थानीय होता है। बिम्बप्रतिबिम्बरूप से जीव एवं ईश्वर को स्वीकार करते हैं तो ईश्वर का स्वातन्त्र्य एवं जीव का परतन्त्रय युक्ति युक्त होता है। कौन पुरूष जल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर प्रतिबिम्ब ही मैं हूँ ऐसा मानता है। उसी प्रकार ईश्वर भी अपने प्रतिबिम्ब रूपजीवनगतक्रिया को अपना मानता है। अत एव कल्पतरूकार ने कहा है-

प्रतिबिम्बगता पश्यन्नृजुवक्रादिविक्रियाः।
पुमान् क्रीडेत् यथा ब्रह्म तथा जीवस्थविक्रिया।।

टिप्पणी

इस प्रकार सूर्य सर्वत्र आलोक का प्रसारण करता है। आलोक का विशेष प्रकाश स्थान यथा दर्पण तथा अज्ञान प्रतिबिम्ब का विशेषाभिव्यक्ति स्थान ही अज्ञानपरिणामविशेष ही अन्त:करण है। केवल अन्त:करण से अज्ञानोपाधि का परित्याग करना सम्भव नहीं है। कारण तो केवल अन्त:करण के उपाधि से परिच्छिन्न चैतन्य जीव ऐसा स्वीकार किया जाता है योगियों कायव्यूहअधिष्ठान सम्भव नहीं हो पायेगा। माया में चैतन्य प्रतिबिम्ब ईश्वर है। वही माया अनादि होती है। जैसे पंचदशी के चित्र प्रकरण में कहा गया है-

जीवेशौ विशुद्धौ वितथा जीवेशयोर्भिदा।
अविद्या तच्चितो योग: षडस्माकम् अनादय:॥ इति।

वह माया सद् एव असद् के द्वारा अनिर्वाच्य होती है। ब्रह्म के ज्ञान होने पर वह माया नष्ट हो जाती है। अत वह माया सत्स्वरूपा नहीं है। माया का अपरोक्षप्रतिभासरूप संसार में दिखता है इसीलिए वह असद् भी नहीं है। सिद्धान्तलेशसंग्रह में कहा गया है- अथ क: ईश्वर को वा जीव:? अत्रोक्तं प्रकटार्थविवरण अनादिरनिर्वाच्या भूतप्रकृति: चिन्मात्रसम्बन्धि नी माया तस्यां चित्प्रतिबिम्ब ईश्वर: इति। पञ्चद्शी के तत्त्वविवेकप्रकरण में माया आश्रित विद्या के भेद की परिकल्पना करके माया में चित्प्रतिबिम्ब ईश्वर को कहा गया है। विशुद्धसत्वप्रधाना माया। मलिन एवं सत्वप्रधान अविद्या होती है। तादृशी अविद्या में चित्प्रतिबिम्ब ही जीव है। पंचदशी के तत्वविवेकप्रकरण में कहा गया है।

सत्त्वशुद्धविशुश्द्धभ्यां मायाविद्ये च ते मते।
मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ: ईश्वर:॥

अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा।
सा कारणशरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान्॥ (1.16.17) इति।

सिद्धान्तलेशसंग्रह में कहते हैं-

तत्वविवेके तु त्रिगुणात्किाया: मूलप्रकृते: जीवेशावभासेन करोति माया च अविद्या स्वयमेव भवति इति श्रुतिसिद्ध द्वौ रूपभेदो रजस्तमोऽनभिभूतशुद्धसत्त्वप्रधाना माया, तदभिभूतमलिनसत्वप्रधाना अथ इति मायाभेदं परिकल्प्य मायाप्रतिबिम्ब ईश्वरोऽविद्याप्रतिबिम्बो जीव: इत्युक्तम् इति। कार्योपाधिरयं जीव: कारणापाधिरीश्वर: इस श्रुति का आश्रय लेकर संक्षेपशारीरिककार ने सर्वज्ञात्ममुनि ने कहा है कि- अविद्यायां चित्प्रतिबिम्ब: ईश्वर:। पुन: अन्त:करणां चित्प्रतिबिम्बो जीव: इति। वस्तुत: जीव एवम् ईश्वर का तो अभेद ही है। जीव एवम् ईश्वर का भेद अविद्या से कल्पित एवम् उपाधिकृत् ही है। इसीलिए भगवत्पाद शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्रगत समन्वयाध्याय के द्वितीयपादगत अन्तर्यामि-अधिकरण में शरीरश्चोभ्येऽपि हि भेदनैनमधीयते (1.2.20) और कहते हैं- अत्रोत्यते अविद्याप्रत्युपस्थापितकार्यकरणो- पाधिनिमित्तोऽयं शारीरान्तर्यामिणो: भेदव्यपदेश: न पारमार्थिक:। एको हि प्रत्यगात्मा भवति, न द्वौ प्रत्यगात्मानौ सम्भवत:। एकस्यैव तु भेदव्यवहार: उपाधि कृत: यथा घटाकाशो महाकाश इति।

अवच्छेदवाद के द्वारा ईश्वर का स्वरूप

दूसरे कुछ लोग कहते हैं कि, जो पदार्थ रूप के द्वारा उपहित नहीं है, उसका प्रतिबिम्ब सम्भव नहीं है। जैसे- नीरूप आकाश का प्रतिबिम्ब सम्भव नहीं है। वैसे ही सर्वोपाधि से विवर्जित निर्विशेष रूप ब्रह्म का भी प्रतिबिम्ब नहीं है। माया अविद्या है, ऐसा मानकर कुछ माया को एक ही है, ऐसा कहते हैं। माया के एकत्व होने में श्रुतियाँ पायी जाती हैं कि- मायां तु प्रकृतिंविद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। (श्वेताश्वतरोपनिषत् 4.10) अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।। (4.5)। वहाँ पुनः स्मृति होती है कि- तरति अविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते। योगी माययमेयास तस्मै विद्यात्मने नमः।। माया से उपहित चैतन्य ईश्वर साक्षी होता है। माया से अवच्छिन्न चैतन्य ही ईश्वर है। अत एव वेदान्त की परिभाषा में धर्मराजध्वरीन्द्र जी कहते हैं- ततश्च तदुपहितं चैतन्यम् ईश्वरसाक्षि। तच्चानादि, तदुपाधेर्मायायाः अनादित्वात्। मायावच्छिन्नं चैतन्यं परमेश्वरः। मायायाः विशेषणत्वे ईश्वरत्वम्, उपाधित्वे साक्षित्वमिति ईश्वरसाक्षित्वयोर्भेदः, न तु धर्मिणोरीश्वरसाक्षिणोर्भेदः इति। अतः माया से अवच्छिन्न चैतन्य ईश्वर है। अन्तःकरण से अवच्छिन्न चैतन्य जीव है।

पाठगत प्रश्न 19.1

1. माया और ब्रह्म में एकत्व प्रतिपादक श्रुतियाँ क्या हैं?
2. ब्रह्म का तटस्थ लक्षण विषय वाली श्रुतियाँ कौन-कौन सी हैं?
3. जगत् प्रति जितने उपादानकारण हैं, ईश्वर के जगदोपादानकारण का अपरोक्ष होने में कौन सी श्रुतियाँ प्रमाण हैं?
4. परमेश्वर का कार्यकारणानुकूलप्रयत्न होने में कौन सी श्रुतियाँ प्रमाण है?
5. जन्म का आदि होने में कौन सी श्रुति प्रमाण हैं?
6. जगदुत्पत्ति के विषय में वाक्यसुधाकार ने क्या कहा है?
7. जन्माद्यस्य यतः इस व्यास विरचित ब्रह्मसूत्र में तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि का समास प्रदर्शन करिए।
8. जन्माद्यस्य यतः इस व्यास विरचित ब्रह्मसूत्र का निर्णय वाक्य क्या है?
9. शास्त्रयोनित्वाधिकरण का विषयवाक्यं क्या है?
10. वर्णक क्या है?
11. ब्रह्म का सगुणत्व प्रतिपादक एक श्रुति बताओ।
12. ब्रह्म के सगुणत्व का प्रतिपादिका स्मृति क्या है?
13. माया और विद्या में एकत्व प्रतिपादिका स्मृति क्या है?
14. माया और विद्या के भेद विषय में विद्यारण्यस्वामी ने क्या कहा?

टिप्पणी

15. षड् अङ्गादि क्या हैं?

16. प्रलय क्रम के सद्भाव में विष्णु पुराण में क्या कहा है?

17. ब्रह्म का द्विरूप होने में कौन-कौन सी श्रुतियाँ प्रमाण हैं?

18. जीव और ईश्वर का अभेद विषय में भगवत्पाद शंकराचार्य ने क्या कहा?

19. दश विद्या स्थान क्या-क्या हैं?

पाठसार

परम आनन्द की प्राप्ति ही वेदान्तियों का मुख्य प्रयोजन है। जो मन्दमति वाले हैं उन का परमानन्द प्राप्ति के लिए सोपान सगुण ब्रह्मोपासना है। नामरूपविकारभेदोपाधि से विशिष्ट सगुण ब्रह्म होता है। निर्गुण ब्रह्मप्राप्ति के लिए आदि में सगुण ब्रह्म उपासनीय हैं। सगुण ब्रह्म ही जगत् का सृजन करता है। सगुण ब्रह्म जगत के जन्मादि का कारण है। सगुण ब्रह्मोपासन के द्वारा चित्तशुद्धि होती। चित्तशुद्धि का दूसरा नाम सत्त्वशुद्धिः। सत्त्वशुद्धि के द्वारा ही परमानन्द आत्मा की प्राप्ति होती है। हम सब आत्मस्वरूप ही हैं। किन्तु अज्ञानवश आत्मा को नहीं जान पा रहे हैं। अज्ञान के नाश के लिए हमको कर्म करना चाहिए। उपासना भी कर्म है। अन्तिम में शुभ और अशुभ कहना चाहिए। अत एव श्रीमद्भवद्गीता में कहा है-

सर्वधमान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

यहाँ धर्म शब्द से अधर्म ग्रहण है। कारण यह है कि नैष्काम्य विवक्षित है। अर्थात् सब शुभाशुभ कर्म का परित्याग। निर्गतं कर्म यस्मात् तत् निष्कर्म, निष्कर्मणः भावः नैकर्म्यम्। शुद्धात्मा ही अज्ञानोत्थिसर्वकर्मरहित है। मुण्डकोपनिषद् में कहा है-

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्ट परावरे।।

इस श्रुति का आशय है- शुद्धात्मा की प्राप्ति होने पर ही अविद्याग्रन्थी सर्वसंशय नाश को प्राप्त होते हैं। और सर्वकर्म का नाश होते हैं।

अधिगतविषय :-

1. जन्माद्यस्य यतः इस बादायण विरचित ब्रह्मसूत्र में सगुण ब्रह्म वाक्य है।
2. जगज्जन्मादिकारणत्व ब्रह्म का तटस्थलक्षण।
3. सगुण ब्रह्म नामरूप विकारभेदोपाधिविशिष्ट होता है।

4. अज्ञान सद् और असद् से अनिर्वचनीय सत्वरजस्तमोगुणात्मक ज्ञानविरोधि भावरूप है।
5. लक्ष्य का यावत्स्थितिकाल है उतना ही काल में न बैठकर जो लक्ष्य का व्यावर्तक होता है वही तटस्थलक्षण है।
6. कर्तृत्व हि तदुपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिवाला है।
7. ब्रह्म के नौ तटस्थ लक्षण पाये जाते हैं।
8. ब्रह्म का सर्वज्ञत्व शास्त्रयोनित्वात् सूत्र में दृढीकृत है।
9. सत्यसंकल्पसत्यकामादि गुण सगुणब्रह्म में ही सम्भव होते हैं।
10. जो अनादि से अनिर्वाच्या भूतप्रकृति चिन्मात्रसम्बन्धिनी माया है उस में चित्प्रतिबिम्ब ईश्वर है।
11. कार्योपाधि यह जीव एवं कारणोपाधि यह ईश्वर है। यही जीव और ईश्वर का भेद है।

पाठान्त प्रश्न

1. अवच्छेद के वाद दृष्टि से ईश्वर के रूप की आलोचना कीजिए।
2. जन्माद्यस्य यतः इस में कैसा समास प्रदर्शित किया है?
3. जीव एवं ईश्वर का भेद किस प्रकार का है?
4. माया क्या है?
5. गणु त्रय क्या है?
6. अनादि कितने हैं?
7. बिम्ब प्रतिबिम्बवाद दृष्टि के अनुसार परमेश्वर के स्वरूप की आलोचना कीजिए।
8. पृथिवी कहां लीन होती है?
9. तेज कहां लीन होता है?
10. श्रुत्यादि में कैसे ब्रह्म का सगुणत्व प्रतिपादन किया है?
11. अविद्या क्या है?
12. जीव क्या है?
13. विद्यास्थान कितने हैं, और वे क्या क्या हैं?

टिप्पणी

14. प्रलयक्रम का विष्णु पुराण के अनुसार आलोचना कीजिए।

15. ब्रह्म के तटस्थ लक्षण की आलोचना कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. माया के एकत्व में श्रुतियाँ होती हैं कि- मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् (श्वेताश्वतरोपनिषत् 4.9)। अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः। (4.5)

2. तैत्तिरीयायनिषद् के भृगुवल्ली में कहा गया है कि- भृगूवैं वारूणिः। वरूणं पितरम् उपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयत्न्यभिसंविशन्तीति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति। (3) यह तटस्थलक्षणविषयिणी श्रुति है।

3. यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः। तस्मादेतत् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते (09) यह मुण्डकोपनिषद् गता श्रुति परमेश्वर का अपरोक्षज्ञान के सद्भाव में प्रमाण है।

4. परमेश्वर के कार्यकरणानुकूलप्रयत्न के सद्भाव में तैत्तिरीयोपनिषद् में पढ़ी गयी श्रुति है- सोऽकामयत। बहुस्याम् प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च। तद्सृष्ट्वा। तदेवानुप्राविशत्। (2.6)

5. भृगूवैं वारूणिः। वरूणं पितरम् उपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति। तं होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति। (3)। यह तैत्तिरीयोपनिषत्गतश्रुति प्रमाण है।

6. वाक्यसुधाकार ने कहा है- अस्ति भान्ति प्रियं रूपं नाम चेति अंशपंचकम्। आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्।

7. जन्मः उत्पत्तिः आदि अस्य यह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि समास है। जहाँ विशेषण के साथ विशेष्यरूपान्यपदार्थ का भी ग्रहण होता है, वहाँ तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि समास होता है। इसी सूत्र में विशेषण से जन्म के साथ का स्थिति लय का भी ग्रहण होता है।

8. इसी सूत्र का निर्णय वाक्य यह भी है कि- आनन्दात् हि एव खलु इमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति। (3.6)

9. इस अधिकरण में वर्णकद्वय हैं। प्रथम वर्णक में- अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेव एतत् यत् ऋग्वेदः। (42.4.0) यह बृहदारण्यकोपनिषद् गत श्रुतिवाक्य ही विषय है। द्वितीय वर्णक में- तं तु औपनिषदं पुरूषं पृच्छामि। (3.9.26) यह बृहदारण्यकोपनिषद् गत श्रुतिवाक्य ही विषय है।

10. सूत्र के एक प्रकार तात्पर्यार्थं कि वर्णन जिस भाष्यांश में है, वह ही वर्णक है, ऐसा कहा जाता है।

11. श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहते हैं- त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि, त्वं जातो भवतिविश्वतो मुखः। (4.3)

12. श्रीमद्भवद्गीता में भी कहते है।- सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमखम्।

13. वहाँ स्मृति होती है कि- तरति अविद्यां विततां हृदि यस्मिन्निवेशिते। योगी माययमेयाय तस्मै विद्यात्मने नमः।

14. पञ्चदशी के तत्त्व विवेक प्रकरण में आख्यान विदित हैं कि- सत्तवशुद्ध्यविशुद्धिभ्यां मायाविद्ये च ते मते। मायाबिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञः ईश्वरः।। अविद्यावशगस्त्वन्यस्तद्वैचित्र्यादनेकधा। सा कारणशरीरं स्यात्प्राज्ञस्तत्राभिमानवान्।। (6.7)

15. पञ्चदशी के चित्र प्रदीप प्रकरण में कहा गया है कि- जीव ईशो विशुद्धा चित्तथा जीवेशयोर्भिदा। अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकम् अनादयः।।

16. विष्णुपुराण में भी कहा गया है कि- जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे! पृथिव्यप्सु प्रलीयते। तेजस्यापः प्रलीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते।। वायुश्च लीयते व्योम्नि तच्चाव्यक्ते प्रलीयते। अव्यक्तं पुरूषे ब्रह्मन् निष्कलं संप्रलीयते।।

17. यत्र हि द्वैतमिव भवति, तदितरः इतरं पश्यति, यत्र तु अस्य सर्वमात्मैव अभूत्, तत् केन कं पश्येत् (बृहराण्यकोपनिषत्-4/5/5), यत्र न अन्यत् पश्चति, न अन्यत् शश्णोति, न अन्यत् विजानाति, स भूमा, अथ यत्र अन्यत् पश्चति, अन्यत् शश्णोति, अन्यत् विजानाति, तदल्पम्, यः वै भूमा तत् अमृतम्, अथ यदल्पम् तन्मत्त्यम्। (छान्दोग्योपनिषत्-7/24) निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। अमतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्।। (श्वेताश्वतरोपनिषत्) इत्यादि जो श्रुतियाँ हैं ये विद्या एवम् अविद्या के भेद से परब्रह्म परमेश्वर के द्विरूपत्व का कथन करते हैं।

18. भगवत्पाद भी कहते है। कि- अत्रोच्यते अविद्याप्रत्युपस्थातिपकार्य- करणोपाधिनिमित्त अयं शारीरान्तर्यामिणाः भेदव्यपदेशः, न पारमार्थिकः। एकः हि प्रत्यगात्मा भवति, न द्वौ प्रत्यगात्मानौ सम्भवतः। एकस्यैव तु भेदव्यवहारः उपाधिकृतः यथा घटाकाशः मठाकाश इति।।

19. पुराण न्याय मीमांसा धर्मशास्त्राणि शिक्षाकल्पव्याकरणनिरूक्तछन्दो- ज्योतिषाणि षड्ङ्गानि ये दशविद्या स्थान है।

।।उन्नीसवाँ पाठ समाप्त।।